कहां गुम गया अजूबे कारनामे वाला सर्कस

संसार में सर्कस का इतिहास, अति प्राचीन है। सर्कस का प्रादुर्भाव ईसा पूर्व पहली शताब्दी में हुआ माना जाता है, जब लोग एक विशेष स्थान पर इकट्ठा होकर घोड़ों की दौड़ का आनंद लेते थे। जूलियस सीजर के समय रोम में घुड़दौड़ के साथ रथदौड़ भी लोग देखने-दिखाने लगे थे। ईसा पश्चात छठी शताब्दी में इटली में जब ईसाइयों का आधिपत्य स्थापित हुआ तो उन्होंने सर्कस में नए किंतु एक दर्दनाक खेल को भी शामिल कर लिया। वे न्यायालय से मौत की सजा पाए व्यक्ति को, लोगों के सामने खूंखार नरभक्षी जंगली जानवरों के पिंजड़े में डाल देते थे और जब वह नरभक्षी जानवर उस व्यक्ति से लड़ता और फिर टुकड़े-टुकड़े करता तो सर्कस देखने आए लोग सिहर कर खड़े हो जाते। काफी वर्षों तक सर्कस का यही रूप प्रचलित रहा तो धीरे-धीरे लोगों को इस खेल से घृणा होने लगी।

शिवचरण चौहान
लेखक

भारत में सर्कस का प्रादुर्भाव

सर्कस की दुनिया को नया मोड़ सन् 1768 ई. में मिला, जब इंग्लैंड की सेना के सेनापति फिलिप एस अली तथा उसके साथी च्यूली ने मिलकर घोड़ों की पीठ पर बैठकर करतब दिखाने शुरू किए। एस्टली, एक गोल घेरे के मैदान में घोड़े की पीठ पर बैठकर तरह-तरह के करतब दिखाता था। यह खेल इंग्लैंड में इतना लोकप्रिय हुआ कि 1782 में एस्टली के एक अन्य साथी ह्यूज ने रायल सर्कस नाम से एक सर्कस कंपनी ही बना डाली। तभी से इस अनोखे खेलों का नाम सर्कस पड़ा। भारत तथा पड़ोसी देशों में सर्कस का प्रादुर्भाव कब हुआ ठीक से नहीं कहा जा सकता, किंतु यहां की 'नट' और 'करनट' जातियां घूम-घूम कर गांवों में अनोखें खेल दिखाया करती थीं। वैसे भारत में सर्कस का जन्म 19 वीं शताब्दी के आखिरी दशक में हुआ माना जाता है, जब एक विदेशी सर्कस कंपनी भारत आई और उसने मुंबई में एक स्थान पर सर्कस लगाया। इस कंपनी के एक कलाकार विलियम शायनी को घोड़ों के करतब देखने के लिए मुंबई क्या पूरे महाराष्ट्र की जनता उमड़ पड़ी थी। शायनी को अभिमान था कि उसके जैसे करतब भारत में कोई नहीं दिखा सकता है। उसके इस घमंड को कुरंदाबाद (कोल्हापुर) के राजा की सेना के घोड़ों के सईस पंत विनायक छत्ते ने तोड़ा। छत्ते ने सर्कस के मैदान में शायनी का घोड़ा छीनकर ऐसे करतब दिखाए कि खुद शायनी ने दांतों तले अंगुली दबा ली। वह आग को जलते गोले से घोड़े समेत निकल जाता था। छत्ते ने प्रथम सर्कस कंपनी 'छत्तेस न्यू इंडियन सर्कस' स्थापित की। इसके बाद रायल, ताराबाई, कमला सर्कस कंपनियां आईं। सर्कस को भारत में विकसित करने व लोकप्रिय करने का श्रेय केरल के तेल्लिचेरी गांव के जिमनास्ट कन्निकणन को है। कन्निकणन ने अपने गांवों के लड़के-लड़कियों को एकत्र कर उन्हें शारीरिक करतबों में ऐसा प्रशिक्षित किया कि देश-विदेश से उसके द्वारा प्रशिक्षित कलाकारों की मांग होने लगी। कन्निकणन के सहयोग से ही अमर सर्कस, भारत सर्कस तथा ओरियंट सर्कस कंपनियों ने विदेशों तक में अपने तंबू गाड़े व अपनी पताका फहराई।

नए सिरे से खड़ी होतीं सर्कस कंपनियां

एक समय आया था जब सिनेमा, भारत में बहुत लोकप्रिय हो गया था और लगा था कि शायद अब सर्कस का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि सर्कस ने भी समय के अनुसार आधुनिकतम रूप ले लिया। आज सर्कस कंपनियां कम है, जिन्हें सरकारी मदद देकर सामाजिक प्रोत्साहन देकर और बढ़ाया जा सकता है। जहां सर्कस लगता है, वहां सर्कस गांव स्थापित हो जाता है। सर्कस कंपनियां, अपना डेरा-तंबू, सामान, हाथी, घोड़ों, शेरों के पिंजड़ों को लाने ले जाने के लिए अपने वाहन रखती हैं। कई कंपनियां तो रेल के डिब्बे भी प्रयोग में लाती हैं। सर्कस में जानवरों के प्रदर्शन पर रोक लगने से सर्कस को झटका लगा है। सर्कस में जानवरों के रोक लग जाने पर निश्चित तौर से सर्कस के मालिकों और कलाकारों को झटका लगा है। आज भारत में कस्बों मेलों शहरों में कहीं-कहीं सर्कस कंपनियां अपने करतब करते दिखाई दे जाती हैं। मोबाइल गेम के कारण वे बच्चे सर्कस देखने कम आते हैं। पर सर्कस अब नए रूप में आ रहा है। दुनियाभर में सर्कस कंपनियां नए सिरे से खड़ी हो रही है। सर्कस कंपनियों में अब जादूगर भी अपने खेल दिखाने लगे हैं।

विदेश में भी लोकप्रिय है सर्कस

एक समय भारत में करीब पांच सौ छोटी बड़ी सर्कस कंपनियां थीं जो हाट, बाजारों, मेलों, ठेलों, शहरों में करतब करती थीं। आज मुश्किल से कुछ सर्कस बची है। भीरबाट, कमला, अपोलो, भारत जंबो कंपनियां आईं। एक जमाने में मशहूर कमला सर्कस के बहुत से कलाकार मर गए और भारत में सर्कस कंपनियां चलाने में लोगों के रुके नहीं रही। सर्कस, एशिया, यूरोप, अमेरिका, इटली, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों में बहुत लोकप्रिय खेल रहा है। जर्मनी के घुमक्कड़ सर्कस कलाकार पूरी दुनियाभर में मशहूर थे। सर्कस को आधुनिक रूप देने में अमेरिका का नाम प्रमुख है। अमेरिका में ही सबसे पहले जानवरों शेर, चीता, भालू, हाथी, कुत्तों, घोड़ों, तोतों आदि के अद्भुत करतब दिखाने शुरू किए। आंबर्ग, पाला कलाकार था, जो शेर के मुंह में अपना सिर घुसेड़ देता था। तब के सोवियत संघ में सर्कस ने नए-नए करतबों का विकास हुआ। जोकरों का प्रयोग, सर्कस में रूस की ही देन है। बौने, लंबे, मोटे जोकर विदूषक अपने करतबों से खूब हंसाते हैं। लड़कियों का अंग तोड़ना तथा झूले का आश्चर्यजनक खेल, आज सभी सर्कसों में दिखाया जाता है। ये भी अमेरिका की देन है। जानवरों के खेल, करतब मौत का कुंआ, शेर से कुश्ती सहित अनेक अद्भुत खेल, आज सर्कस में दिखाए जाते हैं, जिन्हें देखकर दर्शक दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं।

छापा-चित्रों में अतियथार्थवादी छाप : मनोहर लाल भूगड़ा

इसे भारतीय कला जगत की विसंगति ही कहा जाना चाहिए कि आजादी के बाद से हमारी आधुनिक या समकालीन कला महानगर केंद्रित रही है। इसका परिणाम यह रहा कि हमारे जिन वरिष्ठ कलाकारों या कला-गुरुओं ने महानगर-परिक्रमा से परहेज रखा, उन्हें अपने ही शहर में वह ख्याति नहीं मिल पाई, जिसके वे वास्तविक हकदार थे। ऐसे ही कला-गुरुओं में एक हैं मनोहर लाल भूगड़ा। लखनऊ कला महाविद्यालय में अपनी शिक्षा से लेकर अध्यापन-काल तक उन्होंने प्रिंटमेकिंग या छापा-चित्रण जैसे जटिल माध्यम की तकनीकों को साधते हुए कला-सृजन जारी रखा। वर्ष 1988/89 के दौरान मुझे उनके सान्निध्य का अवसर मिला था। जाहिर है, तब उनके छापा-चित्रों और उसकी तकनीक ने मुझे बेहद प्रभावित किया था।

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

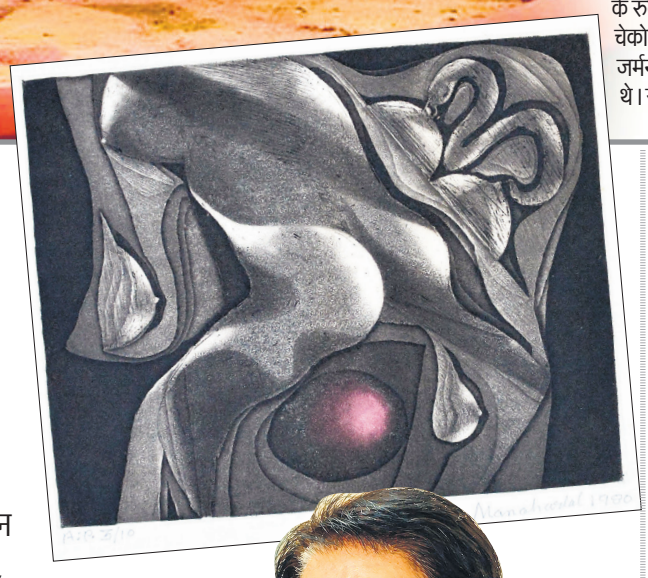

समकालीनों से अलग पहचान

लखनऊ ही नहीं, देश के समकालीन ग्राफिक कलाकारों में मनोहर लाल भूगड़ा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1 अगस्त 1947 को जन्मे भूगड़ा ने लखनऊ के गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट एंड क्राफ्ट से 1968 में पंचवर्षीय डिप्लोमा तथा 1971 में छापा-चित्रण (प्रिंटमेकिंग) में पोस्ट डिप्लोमा प्रथम श्रेणी में प्राप्त किया। आगे की उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए उन्हें 1973 से 1975 के बीच शांतिनिकेतन में प्रख्यात प्रिंटमेकर सोमनाथ होर के निर्देशन में अध्ययन का अवसर मिला। इसके उपरांत 1979 से 1981 तक भारत सरकार के सांस्कृतिक विभाग के अंतर्गत 'प्रिंटमेकिंग के विभिन्न माध्यमों और सामग्रियों का अन्वेषण' परियोजना पर शोध-फेलो के रूप में उन्होंने छापाकला की नई संभावनाओं पर गंभीर प्रयोग किए। मनोहर की रचनात्मकता का मूल आधार उनकी प्रयोगधर्मी दृष्टि रही है। उन्होंने कोलोग्राफ, टोनल वैरिएशन, एचिंग, ड्राई प्वॉइंट, एंग्रेविंग, विस्कोसिटी, डीप एचिंग, एल्युमिनियम प्लेट पर ड्राई प्वॉइंट, लिथोग्राफी और सॉफ्ट-इफेक्ट जैसी विविध तकनीकों में कार्य किया। यह बहुआयामी तकनीकी दक्षता उन्हें अपने समकालीनों से अलग पहचान देती है।

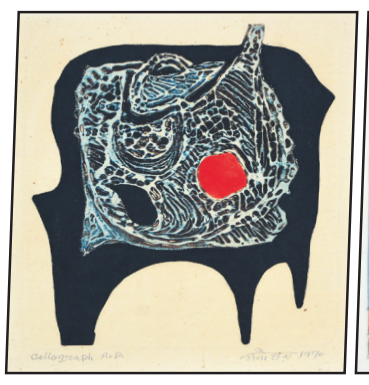

पिकासो के नियो-क्लासिकल के दौर की याद

विषय-वस्तु की दृष्टि से उनके छापा-चित्रों में नारी-आकृति प्रमुखता से उभरती है। श्वेत-श्याम संयोजन के माध्यम से वे एक रहस्यमय और गहन मनोवैज्ञानिक परिदृश्य रचते हैं। उनकी आकृतियां मांसल, सुदृढ़ और त्रिआयामी प्रभाव लिए होती हैं, जिनमें प्रकाश और अंधकार का द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मानो वे यह संकेत दे रहे हों कि प्रकाश हमें प्रकाशित करता है, जबकि अंधकार हमें सजग बनाता है और दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। उनकी नारी-आकृतियां कहीं-कहीं पाब्लो पिकासो के नियो-क्लासिकल और यथार्थवादी दौर की याद दिलाती हैं, किंतु भूगड़ा की दृष्टि पूरी तरह भारतीय संदर्भों में रची-बसी है। आकृतियों में लयात्मकता, ऊर्जा और आंतरिक तनाव का संतुलित संयोजन दिखाई देता है। यह ऊर्जा केवल दृश्य नहीं, बल्कि चेतन और अचेतन मन की गहराइयों से उपजती प्रतीत होती है। मनोहर के छापा-चित्रों की एक विशिष्ट विशेषता उनका अतियथार्थवादी आयाम है। यद्यपि आकृतियों की मूल संरचना यथार्थपरक होती है, किंतु उनके मुख-भाग, अंगुलियों या अन्य अंगों में किए गए विकृत एवं कल्पनाशील हस्तक्षेप दर्शक को एक मनोवैज्ञानिक और स्वप्निल संसार में ले जाते हैं। यह वह बिंदु है, जहां कला मूर्त से अमूर्त की ओर अग्रसर होती है और पुनः एक नए रूप में मूर्तता ग्रहण करती है। इस प्रक्रिया में सत्य और स्वप्न के बीच का अंतर मिटता हुआ प्रतीत होता है।

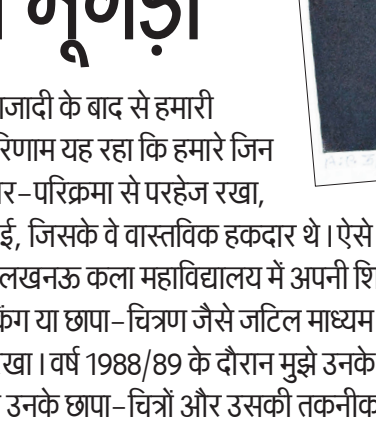

रंगों के माध्यम से लयात्मकता और संगीतात्मक प्रभाव

प्रतीकों का प्रयोग भी उनके कार्य का महत्वपूर्ण पक्ष है। सर्प, पक्षी, सूंड और मछली जैसे रूपांकनों के माध्यम से वे भारतीय पौराणिक और सांस्कृतिक अर्थ-संदर्भों को जोड़ते हैं। सर्प भय, शक्ति और सृजनात्मक ऊर्जा का प्रतीक है, पक्षी आकाश और पृथ्वी के मध्य दैवीय सेतु, सूंड शक्ति और स्थायित्व का द्योतक, जबकि मछली जीवन और लय का संकेत देती है। इन प्रतीकों के माध्यम से उनके चित्र एक गहन सांस्कृतिक संवाद स्थापित करते हैं। रंगों के प्रयोग में भी उनकी विशिष्टता स्पष्ट है। टरक्वॉइज ब्लू, वेरिडियन ग्रीन और लाल रंग के प्रति उनका विशेष आकर्षण रहा है, जिन्हें वे गहरे पृष्ठभूमि रंगों और भूरे टोन के साथ संयोजित करते हैं। इनके बीच उभरता श्वेत रंग एक स्पंदन उत्पन्न करता है, जो पूरी रचना में जीवन का संचार करता है। वे केवल रेखाओं से ही नहीं, बल्कि रंगों के माध्यम से भी लयात्मकता और संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मनोहर लाल भूगड़ा का योगदान केवल एक कलाकार के रूप में ही नहीं, बल्कि एक शिक्षक के रूप में भी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने 1976 से 2010 तक लखनऊ विश्वविद्यालय से संबद्ध कला एवं शिल्प महाविद्यालय में अध्यापन किया और अनेक विद्यार्थियों को प्रिंटमेकिंग की जटिल तकनीकों से परिचित कराया। सेवानिवृत्ति के बाद भी वे सक्रिय रूप से सृजनरत हैं। प्रख्यात कलाकार और पूर्व प्राचार्य जय कृष्ण अग्रवाल के अनुसार, लखनऊ में क्रिएटिव प्रिंटमेकिंग विभाग की स्थापना और विकास में मनोहर की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। सीमित संसाधनों के बावजूद उन्होंने तकनीकी उत्कृष्टता और प्रयोगधर्मिता के माध्यम से न केवल स्वयं को स्थापित किया, बल्कि अन्य छात्रों को भी प्रेरित किया। उस दौर में, जब प्रिंटमेकिंग को पर्याप्त मान्यता नहीं मिल रही थी, मनोहर ने इस माध्यम की असीम संभावनाओं को सिद्ध किया। अंततः मनोहर लाल भूगड़ा की कला-यात्रा हमें यह समझाती है कि प्रिंटमेकिंग केवल तकनीकी कौशल का माध्यम नहीं, बल्कि गहन संवेदनशीलता, प्रतीकात्मकता और वैचारिक गहराई का क्षेत्र भी है। उनकी कृतियां न केवल दृश्य-सौंदर्य का अनुभव कराती हैं, बल्कि दर्शक को एक गहरे आत्मिक और मनोवैज्ञानिक संवाद में भी ले जाती हैं।

लोकयान

संथाली लोक नृत्य : प्रकृति से जुड़ी लोकधारा

संथाली लोक नृत्य मुख्य रूप से झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, बिहार और असम का एक प्रमुख पारंपरिक आदिवासी नृत्य है। संथाली नृत्य झारखंड की संथाल जनजाति द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला एक जीवंत और आकर्षक लोकनृत्य है, जो उनकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और सामुदायिक जीवन का सशक्त प्रतीक है। संथाल, भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन निवासियों में से एक है और ऑस्ट्रोएशियाई भाषा परिवार की मुंडा शाखा से संबंधित हैं। उनकी प्रमुख भाषा संथाली है, जो उनकी पहचान और परंपराओं को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। झारखंड और पश्चिम बंगाल में इनकी सबसे अधिक आबादी पाई जाती है, जबकि ओडिशा, बिहार, असम और त्रिपुरा में भी इनकी उपस्थिति उल्लेखनीय है।

यह नृत्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि संथाल समाज की एकता, आस्था और प्रकृति के प्रति गहरे संबंध का प्रतीक है। संथाली नृत्य की लोकप्रियता इतनी व्यापक है कि इसे भारतीय सिनेमा में भी स्थान मिला है, जैसे कि प्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजीत रे की फिल्म 'अगांतुक' में इसकी झलक देखने को मिलती है।

संथाली नृत्य सामूहिक रूप से किया जाता है, जिसमें पुरुष और महिलाएं मिलकर भाग लेते हैं। नर्तक-नर्तकियां वृत्त या अर्धवृत्त बनाकर, एक-दूसरे की भुजाएं थामे लयबद्ध गति से नृत्य करते हैं। इस दौरान वे अलग-अलग समूह संरचनाएं बनाते हैं, जो नृत्य को और भी आकर्षक बनाती हैं। नृत्य में बांसुरी, ढोल, झांझ और पाइप जैसे पारंपरिक वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता है, जिनकी धुन पर नर्तक अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही गायक भी मधुर गीतों के माध्यम से वातावरण को उत्सवमय बना देते हैं।

यह नृत्य विशेष रूप से वसंत ऋतु के उत्सवों के दौरान प्रस्तुत किया जाता है, जब संथाल समुदाय प्रकृति के नवजीवन का उत्सव मनाता है। वन क्षेत्रों में आयोजित यह नृत्य वनदेवताओं के प्रति श्रद्धा अर्पित करने का माध्यम भी है। इसके अलावा, अतिथियों के स्वागत में भी इसे प्रस्तुत किया जाता है। वेशभूषा की दृष्टि से भी संथाली नृत्य अत्यंत विशिष्ट है। पुरुष पारंपरिक धोती और पगड़ी पहनते हैं तथा स्वयं को पेड़ों की शाखाओं, पत्तियों और फूलों से सजाते हैं। वहीं महिलाएं लाल किनारी वाली सफेद या पीली साड़ी धारण करती हैं और बालों में जंगली फूलों का श्रृंगार करती हैं।

यह प्राकृतिक सजावट उनके प्रकृति से गहरे जुड़ाव को दर्शाती है। संथाली नृत्य की मनोहारी प्रस्तुति को देखने के लिए देश-विदेश से पर्यटक झारखंड आते हैं, विशेषकर वसंत उत्सव के समय। इसकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ रही है और शोधकर्ता भी इसके इतिहास, महत्व और सांस्कृतिक पहलुओं पर गहन अध्ययन कर रहे हैं।